ब्रह्मीभूत पूज्यपाद श्री स्वामी
ब्रजवासी जी महाराज

— का —

संक्षिप्त परिचय एवं सदुपदेश

— प्रकाशक —

भक्तवृन्द
धर्मसंघ आश्रम, बड़का राजपुर (भोजपुर)

प्रकाशन तिथि—मार्गशीर्ष कृष्ण २ वि० सं० २०३७

सहायतार्थ ५० पैसे

-: प्रार्थना :-

धर्म की जय हो, 卐 प्राणियों में सद्भावना हो,
अधर्म का नाश हो, विश्व का कल्याण हो,

॥ हर हर महादेव ॥

हे प्रभो ! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए ।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए ॥
लीजिए अपनी शरण में हम सदाचारी बनें ।
ब्रह्मचारी धर्म रक्षक बीर व्रतधारी बनें ॥
स्ववर्ण आश्रम छोड़कर भक्ति करें नादान ही ।
घर में मधु जिसके नहीं बन-बन भटकता है वही ॥
स्वधर्म पालन भक्ति है भगवान कहते हैं यहीं ।
जगद्गुरु जो धर्म है उनको छोड़े नादान ही ॥
सुख नहीं संसार में यह समझ में आता नहीं ।
विश्व की दुःखरुपता भी समझ में आती नहीं ॥
जान में अनजान में अपराध जो हमसे हुए ।
क्षमा नहीं हम चाहते प्रभु दण्ड की है याचना ॥
दण्ड देना हम पतित को भूल मत जाना कहीं ।
प्रार्थना अंतिम हमारी याद रखना है प्रभो ॥

पूज्यपाद स्वामी ब्रजवासी बाबा
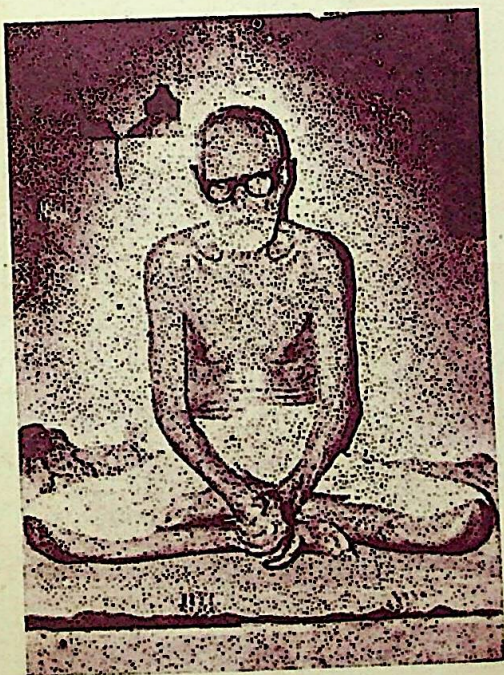
आविर्भाव— पौष कृष्ण १ वि० सं० १९६२

तिरोभाव— कार्त्तिक शुक्ल १ वि० सं० २०३७

दो शब्द

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य, वेदान्तविद्वरिष्ठ, तपो-निष्ठ, धर्मप्राण, परम वीतराग, परमपूज्य श्री स्वामी राधा शरण परमहंस 'श्री व्रजवासी जी' महाराज ने ७५ वर्षों तक घूम-घूम कर देश के विभिन्न प्रान्तों, नगरों और गाँवों में धर्म प्रचार कर लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। आपके सक्रिय सहयोग से अखिल भारतीय धर्म संघ का विशेष प्रभाव शाली प्रचार प्रसार हुआ। आपने बिहार प्रान्तीय धर्म संघ के अध्यक्ष पद के गुरुतर कार्यभार को संभाल कर सफल संचालन करके प्रबल धर्मनिष्ठा का परिचय दिया। आपके चामत्कारिक प्रभाव से आज भी भक्तजन चमत्कृत हैं। धर्म प्रचार के महाभियान में सहस्रों भक्तजनों को उनके उपदेशा-मृतपान का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिनमें से विशेष सम्पर्क में आने वाले परम भाग्यशाली भक्तों की पूरी जानकारी सम्प्रति दुर्लभ ही है। कारण यह कि उनमें से अधिकांश श्रद्धालु भक्त अपने पार्थिव शरीर का परित्याग कर सुर दुर्लभ लोकों को प्राप्त हो गये हैं फिर भी शेष बचे उन भक्तजनों के नामोल्लेख का मोह संवरण नहीं किया जा सकता, जिन पर श्री स्वामी जी की विशेष कृपा थी तथा जिन्होंने हर तरह से श्री स्वामी जी की सेवा की। इन परम भक्तों के पास अमूल्य उपदेशामृत का संग्रह है। ऐसे भक्तों में पं० श्री रामस्वरुप मिश्र पुजारी, चंदीकरा, मैनपुरी, पं० भगवती प्रसाद मिश्र, दौलतगंज-कानपुर

सेठ मधुसूदन प्र० केशरी, बक्सर, श्री जीतनारायण राय, धूमराय का पूरा, भोजपुर, श्री रामचन्द्र सिंह, जारंग; वैशाली प्रमुख हैं इनके अतिरिक्त श्री शिव जी बाबा परम सौभाग्यशाली भक्त हैं; जिन्होंने अन्त समय तक परम निष्ठा और तत्परता से श्री स्वामी जी की सेवा में संलग्न रहे। श्री स्वामी जी महाराज के जीवनवृत्त तथा सदुपदेश के संकलन एवं प्रकाशनमें आचार्य श्री केशवदेव जी उपाध्याय (बलिया) श्री कन्हैया जी तारनपुर तथा श्री विश्वनाथ ब्रह्मचारी; मंत्री धर्म संघ बिहार का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, जिससे यह अमूल्य भेंट भक्तों के कर-कमलो में समर्पित कर मैं श्री स्वामी जी के चरणों में अंतिम श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

विनीत :
ब्रह्मचारी भरत जी मिश्र
धर्मसंघ आश्रम, बड़का राजपुर (भोजपुर)

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

पूज्य श्री 'ब्रजवासी' स्वामी जी का जीवन-वृत्त

दिव्य विभूतियों की जननी दिव्य भारत भूमि धन्य है जहाँ आविर्भूत होकर अलौकिक प्रतिमाएँ तमसाच्छन्न मानवता को सदा आलोकित करती रहती है। यद्यपि आज अपने को भगवान कहलाने वाले नकली अवतारों की बाढ़ सी आ गई है, तथा उन तथाकथित नकली भगवानों के आत्म प्रचारात्मक चमत्कारों से जनता गुमराह हो रही है, तथापि आज भी उन ऋषि-मुनियों के आविर्भाव की सच्ची शृंखला टूटी नहीं है, जो आत्म प्रचार की प्रवृति से दूर रहकर आत्माराम में रमण करते हैं और श्रद्धालु भक्तजनों को आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। परम वीतराग धर्म प्राण तपोनिष्ट वेदान्तविद् वरिष्ट पूज्य पाद श्री स्वामी राधाशरण परमहंस ब्रजवासी जी महाराज भी स्वनाम धन्य सन्तों की इसी शृंखला की अटूट कड़ी हैं, जिनके ज्ञानालोक से अनेकानेक भक्तजनों का जीवन आलोकित हो रहा है। ऐसे ही संत तीर्थों को भी तीर्थ बनाते हैं, "तीर्थानि तीर्थी कुर्वन्ति

सन्ता: ।" धन्य हैं वे बड़भागी भक्त जिन्हें ऐसे सन्तों के सत्संग का अलभ्य लाभ उपलब्ध है ।

अविर्भाव काल

सुरनरवंदिता ललितललाम लीलामयी जिस व्रजभूमि में अवतार लेकर नन्द-नन्दन, कंस निकन्दन, व्रजेश आनन्दकन्द परमानन्द श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने भार पीड़ित पृथ्वी का भार उतार कर भक्तों का उद्धार किया, उसी व्रजभूमि में अविर्भूत होकर पूज्यपाद श्री स्वामी राधाशरण परमहंस व्रजवासी जी महाराज एकनिष्ठ होकर भक्तों में वेदान्त का प्रचार किया। पूज्य श्री व्रजवासी बाबा व्रजवाटिका के ऐसे स्वर्णाभ धन्य सन्त सुमन हैं, जिनकी बेजोड़ वेदान्त विद्वतासे नास्तिक और विरोधी भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। परम पावन व्रज मंडलान्तर्गत पचहरा ग्राम गोरई इगलास जिला अलीगढ़ में एक कुलीन सदाचारी संयमी एवं तपस्वी ब्राह्मण रहते थे जिनका शुभ नाम था पंडित चन्दन शर्म उपाध्याय। इन्हीं पंडित जी के पवित्र गृह में शुभ संवत् १९६२ वि० पौष कृष्ण प्रतिपदा को एक सर्व सुलक्षण सम्पन्न सौम्य सुन्दर सुत के रूप में पूज्यपाद श्री स्वामी जी का आविर्भाव हुआ। ऐसे विलक्षण पुत्र रत्न को प्राप्त कर माता-पिता को जितना हर्षोल्लास हुआ उससे कहीं अधिक आनन्द भक्तों को मिल रहा है, इन्हें ब्रह्मनिष्ठ परमहंस के रूप में पाकर।

बाल्य काल

श्री स्वामी जी के बचपन का नाम उमराव उपाध्याय हैं। अपने पिता की तीन सन्तानों में सबसे बड़े आप ही थे। एक भाई और एक आनन्दी नामक बहन थी। पूर्व जन्म के संस्कार के फल स्वरूप इनमें जन्मजात विलक्षणता थी।

बचपन से ही आप में प्रखर प्रतिभा परिलक्षित होती थी। सचमुच "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" अपनी लोकोत्तर प्रतिभा के कारण आप समवयस्क बालकों में विशिष्ट स्थान रखते थे। कुलीन तपोनिष्ठ पिता के सदाचार और धर्माचरण के प्रभाव ने आपका चरित्रनिर्माण किया। फलतः "बाढ़े पुत्र पिता के धर्मा" के अनुसार आप उज्ज्वल एवं संस्कारित भविष्य की ओर तीव्रता से बढ़ने लगे।

शिक्षा

अल्पकालिक—आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय ग्राम पाठशाला में ही हुई, तदुपरान्त आप हाई स्कूल में अध्ययनरत हुए। प्रखर-प्रतिभा के कारण आप पढ़ने में तेज तो थे, परन्तु यह लौकिक शिक्षा आपके लिए कितनी उपयोगी थी? जब कि आप परमार्थ पथ के पथिक होने वाले थे। फलतः वैराग्योन्मुखता ने अध्ययन कर्म अल्पकाल में ही तोड़ दिया। आपकी वैराग्योन्मुखता को देखकर परिवार चिन्तित हुआ।

वैराग्योन्मुखता की बेड़ी

आप में स्वाभाविक वैराग्य था। सांसारिकता में आप

को रुची नहीं थी। आप तो निवृत्ति मार्ग के पथिक बनना चाहते थे परन्तु अपनी सन्तानों को निवृत्ति मार्ग में जाने की अनुमति देने वाले माता-पिता तो विरले ही होते हैं। प्रायः सभी अपनी सन्तानों को प्रवृत्तिमार्ग में ही प्रवृत्त होने की प्रेरणा देते हैं। स्वामी जी के माता-पिता भी इसके अपवाद नहीं थे। फलतः आपको वैराग्योन्मुख देख कर उन्होंने गृहस्थाश्रम के मायाजाल में फंसाने का उपक्रम किया। मर्यादापालन की दृष्टि से आपने विवाह बंधन स्वीकार तो कर लिया, परन्तु वैराग्यजनित पूर्वार्जित संस्कार भगवदोन्मुखता की ओर प्रेरित करते रहे।

गृह परित्याग

तीर्थाटन में विवाह बन्धन न बना। वैराग्य में उत्तरोत्तर वृद्धि हीहोती गई। फलतः शास्त्र मर्यादा रक्षण की दृष्टिसे एक पुत्ररत्न की प्राप्ति कर उपरान्त अट्ठारह वर्ष की अवस्था में गृहपरित्याग कर जीविकोपार्जन के व्याज से आप अहमदाबाद गए। वास्तव में जो जैसा बनना चाहता है उसे तदनुकूल परिस्थतियां प्राप्त होती जाती हैं और वह वैसा ही बन जाता है। अहमदाबाद की परिस्थितियां भी आपके वशीकरण संज्ञक वैराग्य का सबक बनाने में सहायक हुई। फलतः आप भगवत-भजन एवं शास्त्र चिन्तन पूर्वक तीर्थयात्रा में संलग्न हुए तथा दक्षिण प्रदेशीय क्षेत्र और सम्प्रति पाकिस्तान स्थित प्राचीन तीर्थों के अतिरिक्त कश्मीर आदि सुरम्य क्षेत्रों का परिभ्रमण किया। तदनन्तर

पांच वर्षों बाद पूजनीय माता जी के दर्शन के निमित्त आप मातृभूमि पधारे, परन्तु लौकिक पदार्थ आपको दुखरुप भासने के कारण अपनी ओर आकृष्ट न कर सके । अतएव आप पुनः उत्तराखण्ड के हिमाच्छादित वनस्थली प्रदेश के पवित्र तीर्थों की ओर चल पड़े । पुण्य सलिला भगवती भागीरथी के पावन तट पर स्थित अनेकानेक तपोनिष्ट ऋषियों की तपः स्थली का दर्शन करते हुये पाण्डवों की राजधानी हस्तिनापुर तथा विदुर कुटी आदि स्थानों पर भ्रमण करते हुए अपनी साधना में दत्तचित्त रहे ।

विद्वात् सन्यास : 'परमहंस स्वामी'

अहर्निश

आत्म चिन्तन पूर्वक आप आत्म कल्याण के पथ पर ही अग्रसर होते रहे । आपकी विलक्षण प्रतिमा सबको बरबस आकृष्ट कर लेती । समकालीन तपोधर्म वृद्ध सन्तों का सौहार्द निर्देश, प्रेरणा आदि प्राप्तकर आपने भगवद्निष्ठा में सफलता प्राप्त कर ली । तत्पश्चात आप विधिवत सन्यास लेकर परमहंस रुप में विचरने लगे । इस समय आपका नाम श्री स्वामी राधाशरण परमहंस रखा गया परन्तु व्रजमंडल से सम्बन्ध होने के कारण भक्तजनों में आप श्री 'व्रजवासी' स्वामी के नाम से प्रतिठित हुए । आपने अपनी साधना के क्रम में ही बारह वर्षों तक मौनव्रत धारण किया जिससे कुछ लोगों में आप

मौनी बाबा भी कहलाए। कुछ दिनों तक काष्ठ के पात्र में भिक्षा करने के कारण भक्तजन कठौता बाबा भी कह कर पुकारते हैं।

नेपाल भ्रमण

पूज्य स्वामी जी की पैदल यात्रा ही अधिक समय तक होती रही। गंगातट, यमुनातट तथा नारायणीतट पर यह यात्रा विशेष हुई। इसी क्रम में १६३४ के भूकम्प के पूर्व नेपाल एक चादर पर शीतकाल में पहुंच गए। बुटवल, तानसेन, पालपा, पोखरा आदि नगरों में कुछ दिन रुके। उधर अध्यात्म रामायण पर उनका प्रवचन हुआ। दामोदर कुंड़ा मुक्ति नारायण की यात्रा करते हुए बिहार में पधारे।

बिहारागमन :

पूज्य श्री 'बाबा' से सम्पर्क

भ्रमण करते हुते जब १६३६ ई० में आप बिहार में पहुंचे तो आपकी सन्निकटता में आकर आपके ओज-तेज तथा प्रखर प्रतिभा तथा वेदान्त विद्वता से प्रभावित होकर भक्तों ने आप को 'अभिनव शुकदेव' माना। उस समय आपका तरुण तपस्वो वेष चित्ताकर्षक था। वेदान्त के मर्मस्पर्शी विद्वता-पूर्ण प्रवचन विद्वानों को भी हठात् आकर्षित कर आत्मानु-संधान हेतु साधना की प्रेरणा प्रदान करते। आपके सान्निध

में सैकड़ों भक्तों ने आत्मलाभ की दिशा में उन्नति प्राप्त की । १६४० ई० में आपका सम्पर्क स्वनामधन्य पूज्य स्वामी पशुपति बाबा से हुआ तब से अन्त तक दो शरीर एक प्राण की नाईं विश्व कल्याणार्थ धर्म सम्पादन से संलग्न रहे ।

गोरक्षा आन्दोलन में सक्रिय योगदान

गोरक्षा एवं गोवध-निषेध हेतु आप प्रारम्भ से ही तत्पर हैं। सन् १६४६ में में अ० भा० धर्म संघ के संस्थापक धर्म सम्राट श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के आह्वान पर ब्रह्म लीन श्री स्वामी राज-राजेश्वरानन्द जी तीर्थ के साथ अन्य कर्मवीरों को लेकर दिल्ली पहुंचे और गोरक्षा की मांग की। ब्रह्मलीन होने के समय तक गोवध-निषेध एवं गोरक्षा हेतु प्रयत्नशील रहे ।

धर्म संघ : सफल नेतृत्व

सर्वाभ्युदय एवं कल्याण हेतु धर्म की स्थापना, सर्वानर्थों के मूल अधर्म के नाश, प्राणियों में सद्भावना, विश्वकल्याण तथा गोरक्षार्थ संगठित धर्म संघ के लिए आपने अथक प्रयास किया । आपके सत्प्रयास से धर्म संघ की सैकड़ों शाखाएँ स्थापित हुईं ।

विश्व कल्याण, यज्ञानुष्ठान

विश्व कल्याणार्थं आपके संयोजकत्व एवं नेतृत्व में कई

यज्ञानुष्ठान सफलता पूर्वक सम्पन्न हुए। सहस्त्रचंडी महायज्ञ मझरिया (बक्सर) में आपके ही संयोजकत्व में सफल सम्पन्न हुआ। १९५८ में विहार प्रदेशीय राम राज्य परिषद के महा-अधिवेशन एवं श्री महाविष्णु यज्ञ जलालपुर में आपका काफी सहयोग रहा। एक वर्ष बाद ही पुनः आपने तिलक राय का हाता (बड़का राजपुर, भोजपुर) में श्री विष्णु महायज्ञ एवं अ० भा० राम राज्य परिषद के दसवें महाधिवेशन का सफल संचालन किया।

स्वभाव कोमल, उदार, मृदुल

पूज्यपाद श्री स्वामी जी का उदार और मृदुल स्वाभाव बरबस चित्त को आकर्षित कर लेता था। अपरचित व्यक्ति भी एक बार के दर्शन से ही अच्छी तरह प्रभावित हो जाता था। आप जैसे संतों से ही भारत का गौरव प्रतिष्ठित हैं।

महा प्रयाण

पूज्य स्वामी जी का जीवन जैसा देदीप्यमान रहा, उनकी महायात्रा भी अतीव प्रेरक रही। चातुर्मास्य बड़का राजपुर (भोजपुर) में व्यतीत करने के साथ ही श्री मद्भागवत की कथा तीन महीने सात दिन तक कहने के वाद गत कार्तिक कृष्ण सप्तमी (पूज्य पशुपति बाबा के ६५वें गर्भैक्य दिवस को पूर्णाहुति हुई और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा अन्नकूट की रात में बाबा ब्रह्मलीन हो गए। स्थानीय धर्म संघ आश्रम में पूज्य श्री पशुपति बाबा भी अन्तिम समय उपस्थित रहे।

॥ श्री हरिः ॥

॥ आत्मानुसंधान का क्रम ॥

! श्रीमद् भगवद् गीता का मूल प्रश्न शोक निवृत्ति विषयक है, जो अध्याय २ के ७-८ दो श्लोकों से स्पष्ट है तथा शोक निवृत्ति के लिये भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने देह और देही के विभाग पूर्वक देही का अहं शब्द की निष्ठा रुप से कथन किया है, जो अध्याय २ के श्लोक ११ से लेकर २५ तक स्पष्ट रुप में वर्णन किया है, इससे स्पष्ट प्रतित होता है कि भगवान के मत में देहात्म भाव ही शोक का कारण है जो मोह का पर्यायी है तथा देह से भिन्न देही को अहं शब्द की निष्ठा रुप से ग्रहण करना मोह निवृत्ति है, मोह निवृत्ति होने पर प्राणी सुखी हो जाता है अर्थात् देहात्मभाव के कारण होने वाली काम-भोग रुपा प्रवृत्ति जो दुःखरूपा है सदा के लिए निवृत्ति हो जाती है।

! जिस देही के परिज्ञान से देहात्मभाव की निवृत्ति होती हैं वह जन साधारण के अनुभव में न होनेके कारण अनेक बार श्रवण करने पर भी तद्विषयक बुद्धि उत्पन्न नहीं होती, इस लिये देह से भिन्न देही जो संयमीयोगी का अनुभूत है वह जब प्रत्यक्ष हो तब तद्विषयक बुद्धि उत्पन्न हो, इसलिये शोक निवृत्ति के जिज्ञासु के लिए आत्मानुसंधान की परमावश्यकता है

आत्म भावना दृढ़ होने पर पुनः देहात्मभाव न होगा, देह के धर्मों से मुक्त सुखमय जीवन व्यतीत करेगा।

! देही को अविनाशी, अनाशी, अप्रमेय, नित्य अजन्मा, अमर तथा अव्यय आदि शब्दों से कथन किया है, देही को ही आत्मभाव से ग्रहण करना ब्राह्मी स्थिति शब्द से कथन कर मोह की निवृत्ति बताई है तथा उसी स्थिति को ब्रह्मनिर्वाण नाम से कहा है जो देहादि जगत प्रतीत से शून्य चैतन्य धन स्वतः सिद्ध एक तत्व है, इस प्रकार के निश्चय को सांख्य बुद्धि कहा है यह बुद्धि आत्मानुसंधान के अनन्तर ही उत्पन्न हो सकती है इसलिये सांख्य बुद्धि के साधन रुप में योगविषयक बुद्धि कथन की है जो आत्मानुसंधान का रुपा है।

! यद्यपि अध्याय २ के ४७वें श्लोक में अर्जुन को ',तेरा कर्म में ही अधिकार है " ऐसा कह कर कर्म में प्रेरित किया है, परन्तु इस वाक्य को मुख्यता नहीं दी क्योंकि योग के अन्तर्गत कर्मों का विधान है, असत् प्रवृत्ति जो योग की बाधक है उसकी निवृति ही धर्मानुष्ठान का फल है, जिससे काम-भोग सम्बन्धी भावना के निवृति होने पर सुखपूर्वक योग धारणा प्राप्त हो सकेगी।

! कर्मफल तथा कर्म संग इन दोनों के त्याग को भगवान ने स्पष्ट रुप में स्थान स्थान पर कथन किया है, कर्मों का फल नाशवान है इसलिये फल का त्याग करना है तथा कर्मबन्ध को निवृत्ति कर्म से नहीं होती, ऐसा जानकर कर्म मात्र का त्याग

करना है, इस प्रकार का विचारवान् मुमुक्षु ही आत्मानुसंधान लक्षण योग में प्रवृत्त होता है।

! जहाँ जहाँ गुरु-शिष्य सम्वन्धी अध्यात्म संवाद हैं वहां-वहाँ सभी स्थलों में किसी न किसी प्रकार से आत्मानुसंधान के अनन्तर ही पारमार्थि की ब्राह्मी स्थिति का वर्णन मिलता है वह कहीं पर तम, रज तथा सत् इन तीनों गुणों के क्रमशः संयम रुप में कहीं जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति के संयम क्रम में कहीं पंचकोश के क्रम से कहीं धारणाओं के क्रम से, कहीं संघात के अवयवों के उत्तर–उत्तर निषेध क्रम से तथा कहीं ज्ञान और क्रिया का प्रवाह रुप बहिर्मुख प्रसार है उसके निरोध क्रम से कथन है।

! आत्मानुसंधान देही के अस्तित्व को प्राप्त कराता है, तदनन्तर वस्तु स्वरुप देही की भावना अन्य का उपमर्दन कर केवल अपना ही सद्भाव रखती है, इसलिए वैदिक वृत्ति ज्ञान अन्य का निषेध कर स्वयं शान्त हो जाता है इस प्रकार के सद्भाव को ही ज्ञान की परानिष्ठा नाम से कहा जाता है।

! भगवान शंकराचार्य ने भी उक्त दोनों धारणाओं को निरोध समाधि और ज्ञान समाधि नाम से कथन किया है, निरोध समाधि का अधिकारी तीव्र वैराग्य तथा तीव्र मुमुक्षता सम्पन्न होना चाहिये, ये दोनों साधन श्रद्धा पूर्वक किये हुये वर्णाश्रम कुलाचार का पालन करने से प्राप्त होते हैं॥

! भगवान श्री शंकराचार्य ने संयम का जो क्रम विवेक-चूड़ामणि नामक प्रकरण में लिखा है वह पाठान्तर रुप में कठोपनिषद् तथा श्रीमद् भागवत महापुराण में मिलता है,

इसलिये उसी का नीचे उल्लेख किया जाता है—

वाचं नियच्छात्मनि तं नियच्छबुद्धौ,
धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि।
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे,
विलाप्य शान्ति परमां भजस्व ॥

! एकान्त स्थान में सुस्थिर आसन बद्ध होकर बैठना चाहिए जिससे शरीर तथा इन्द्रियों को किसी प्रकार की चेष्टा न हो, तत्पश्चात् प्रतिलोभ क्रम से वाणी का मन में लय करें अर्थात वाणी से व्यापार न करें; केवल मन में जो वासनामय व्यापार हों उन्हे मंत्र जप के द्वारा रोकें, उस सक्रिय मन को हृदयकाश में स्थापित कर अक्रिय भाव से स्थिर करें, यही मन का बुद्धि में विलय है, ऐसी स्थिति में अन्तर वाह्य किसी प्रकार का व्यापार न होकर अहं भाव से ही मन स्थिर रहता है; इसी स्थिति में साक्षी आत्मा के अनुसंधान की वाधक वाह्य शब्दादि ग्रहण रुप कोई क्रिया भी नहीं है; इसलिये शास्त्रों से श्रवण किये साक्षी का मन से भिन्न अनुभव हो जाने पर हृदयाकांश में स्थित मन को साक्षी आत्मा में स्थापित कर दें यही बुद्धि का साक्षी में लय है, इस स्थिति में शरीर के साथ मिली प्रतीत हुई भी नहीं होती तथा चिन्ता मात्र की अहंता का भी त्याग हो जाता है क्योंकि चित्त से भिन्न वस्तु ही चेतन है, चित्त में जो चेतनता का भास था वह भूल से था, साक्षी प्रकाशक रुप में व्यापक है वह शरीर तथा मन की भांति एक देशीय नहीं, इस प्रकार साक्षी को व्यापक तथा असंग जानना ही साक्षी का निर्विकल्प पूर्णात्मा में विलय करना है, परमात्म बुद्धि दृढ होने

पर उससे भिन्न अन्य प्रतीति विलय हो जाने पर पूर्णचिदानन्द ही शेष रह जाता है, इस प्रकार की आत्मभावना ही शान्तिरुप सुखरुपा है।

! ऊपर कही स्थिति में देहात्मभाव तथा जीवात्मभाव नहीं रहता केवल आत्मभाव से ब्रह्ममात्र का ही ग्रहण होता है अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ तथा मुझसे अन्य किसी प्रकार की प्रतीति नहीं, ऐसी भावना दृढ़ हो जाती है यही कृतकृत्यता है; यही ब्राह्मी स्थिति तथा प्रपंचोपशमावस्था है।

! अनादि काल से दृढ़ हुई जगद्भावना की निवृत्ति के लिये उपर कही ब्रह्म भावना का नित्यनिरन्तर अभ्यास करना परमावश्यक है, इसके अतिरिक्त दुःखनिवृत्ति का अन्य कोई साधन नहीं।

॥ राधाशरण परमहंसः ॥

॥ श्री हरिः ॥

॥ तत्त्वमसिमहावाक्य पदशोधनम् ॥

! परमार्थ वस्तु नित्य शुद्ध, नित्य मुक्त तथा नित्य बुद्ध है उसमें जो त्वम्पद और तत् पद की चर्चा है वह औपाधिक भाव का आश्रय लेकर है इसलिये अधिकारी भेद से केवल त्वम्पद का शोधन अथवा ततपद और त्वम्पद दोनों का शोधन दोनों ही प्रकार शास्त्र सम्मत है, इस विचार के लिये केवल त्वम्पद में होने वाले अभिमान मात्र से उपनिषदों का तात्पर्य नहीं है अभिमान के साथ-साथ उनकी जो उपाधि है उन पर भी विचार करना होगा।

! उपाधियों पर विचार के लिये विद्वानों ने दो मत स्वीकार किये हैं। एक सृष्टि-दृष्टि वाद, दूसरा दृष्टि-सृष्टि वाद; इनमें पहिले मत में त्वम्पद तथा तत्पद दोनों पद है, दूसरे मत में केवल त्वम्पद ही है, इसी आधार पर अधिकारी भेद है, सृष्टि-दृष्टि वाद में दोनों पद होने से दोनों पदों का शोधन करना है तथा दृष्टि-सृष्टि वाद में एक पद होने से एक ही पद का शोधन करना है।

! सृष्टि-दृष्टिवाद में मैं पन की जो उपाधि साभास बुद्धि रुप अहंकार है वह अव्यक्त का कार्य है; जो परोक्ष ईश्वर की

उपाधि है, इसलिये प्रत्यक्ष तथा परोक्ष का भेद भले ही हो, दोनों पद अनुभूत है।

! इस सृष्टि-दृष्टि वाद में त्वमपद के शोधन के पश्चात् परिच्छिन्नता निवृत्ति के लिये कोई द्वार नहीं, जब तक तत् पद का शोधित व्यापक तत्त्व न मिल जाय इसलिये इस मत में दोनो पदों का शोधन परमावश्यक है।

! दृष्टि-सृष्टि वाद के अनुसार मैं पन की उपाधि जो साभास वुद्धिरुप अहंकार है वह रज्जु में सर्प की भांति अविद्या का कार्य है इसलिये उसके लिये कोई भिन्न व्यवहारिक कारण नहीं केवल त्वमपद के शोधन पर जो तत्त्व मिलेगा, वह अधिष्ठान रूप से गृहीत होगा उसमें परिच्छिन्नता का प्रश्न ही नहीं, पदार्थ जैसा है वैसा ही निश्चय करना होगा।

! सृष्टि वाद में भी केवल त्वम् पद के शोधन से उस अवस्था में ब्राह्मीवृत्ति उत्पन्न हो सकती है जब अधिकारी यह निश्चय किये हो कि औपाधिक वाच्य अर्थो मेंही प्रत्यक्ष-परोक्ष परिच्छिन्नपूर्ण तथा अल्पज्ञ सर्वज्ञ आदि भेद हैं विम्व स्थानीय शोधित तत्व दोनों पदों का एक परिपूर्ण अविभक्त तथा अस्पन्द है उस स्थिति में तत् पद की जिज्ञासा ही निवृति हो जायेगी, साथ ही सद्वितीयता की प्रतीति न होगी।

! सृष्टि-दृष्टि वाद में उपाधि व्यवहारिक सत्य है और दृष्टि सृष्टि वाद में उपाधि रज्जु सर्पवत प्रातीतिक है: सृष्टि-दृष्टिवाद

में साभास बुद्धि अनुभूति ज्ञान की सत्यता है, दृष्टि सृष्टिवाद में साभास बुद्धि तथा तत् सम्बन्धी अनुभूति आविद्यक है।

! ब्राह्मीवृत्ति साभास बुद्धिवृत्ति की विस्मरणरुपा है इसलिये वह वृत्ति अवस्था त्रयशून्य स्वत; सिद्ध तथा अनन्य आश्रय है।

॥ राधाशरण परमहंसः ॥

— प्रार्थना —

हे मेरे गुरूदेव करूणासिन्धु करुणा कीजिए ।
हूँ अधम आधीन अशरण अबशरण में लीजिए ॥
खा रहा गोते हूँ मैं भव सिन्धु के मझधार में ।
आसरा है दूसरा कोई न अब संसार में ॥
मुझमें है जप, तप; न साधन और कुछ न ज्ञान है ।
निर्लज्जता है एक बाकी और बस अभिमान है ॥
पाप-बोझे से लदी नइया भंवर में जा रही ।
नाथ दौड़ो अब बचाओ जल्द डूबी जा रही ॥
आप भी यदि छोड़ देंगे फिर कहां जाऊँगा मैं ।
जन्म दुःख से नाव कैसे पार कर पाऊंगा मैं ॥
सब जगह मैंने भटक कर ली शरण प्रभु आपकी ।
पार करना या न करना दोनों मर्जी आपकी ॥
नाशवान संसार की तृष्णा मुझे सता रही ।
बुद्धि को निर्मल बना दो आयु बीती जा रही ॥
स्ववर्ण आश्रम धर्म का पालन करूँ मैं सर्वदा ।
नाथ दो आशीष मुझको ईशभक्ति हो सदा ॥

परम पूज्य श्री स्वामी पशुपति नाथ बाबा के संरक्षण तथा बिहार प्रान्तीय धर्म संघ द्वारा प्रकाशित भारतीय सभ्यता-संस्कृति का प्रबल पोषक धर्मनिष्ठा हिन्दी मासिक पत्रिका का ग्राहक बनकर लाभ उठावें।

वार्षिक सहायता १०)०० रुपये मात्र

प्रधान कार्यालय :
कैलाश भवन पुनाईचक
पटना-८०००२३

मुद्रक— कुमार प्रेस (चौक) बलिया।